कवि नहीं, ऋषि बनो

मुख्य बिंदु

प्रश्न : ओशो, मैं एक छोटा-मोटा कवि हूं। आपके पास बड़ी आशा लेकर आया हूं। आशीष दें कि मैं काव्य-जगत में खूब ख्याति पाऊं।

भैया, गलत जगह आ गए। एक तो मैं आशीष देता नहीं। क्योंकि मैं आदमी जरा उलटा हूं। अगर मैं आशीष दे दूं तो तुम समझना कि उससे उलटा ही होगा। कुछ लोग होते हैं न उलटी खोपड़ी के!

मुल्ला नसरुद्दीन के संबंध में यह बात है कि बचपन से ही वह उलटी खोपड़ी का था। थोड़े दिन तो घर के लोग परेशान रहे। अगर उससे कहें बाहर न जाओ, तो वह बाहर जरूर जाए; अगर कहें शांत बैठो, तो बिलकुल शांत न बैठे। अगर कहें ऊधम मचाओ, तो शांत बैठ जाए। धीरे-धीरे मां-बाप समझ गए कि यह उलटी खोपड़ी है, इससे जो भी कहेंगे उससे उलटा करेगा। सो उससे जो करवाना हो उससे उलटा वे कहते थे, कि बेटा ऊधम कर। बस वह एकदम शांत बैठ जाए, जैसे ध्यान ही करने लगे। मतलब ध्यान करवाना हो, शांत बिठाना हो, तो ऊधम का आदेश देना पड़े। जैसे बाहर वर्षा हो रही हो और उसको न जाने देना हो बाहर, तो उससे कहें, बेटा जा, बाहर खेल आ। वह बिलकुल बाहर नहीं जाएगा। फिर वह भीतर ही भीतर रहेगा।

एक दिन नसरुद्दीन और उसका बाप दोनों बाजार करके लौट रहे थे। अपने गधे पर शक्कर की बोरियां लादे हुए थे। बीच में नदी पड़ी। नसरुद्दीन एक गधे को सम्हाल रहा था, एक गधे को बाप सम्हाल रहा था। देखा बाप ने कि नसरुद्दीन के गधे की बोरी गिरने के करीब है, बाएं तरफ झुकी जा रही है। अब अगर नसरुद्दीन से कहो कि बाईं तरफ से जरा हटा, दाईं तरफ झुका, तो और बाईं तरफ झुका देगा। उलटी खोपड़ी! सो बाप समझता ही था, तो बाप न कहा कि बेटा, जरा बोरी को बाईं तरफ झुका दे। मतलब यह था कि दाईं तरफ झुका दे। मगर गजब हो गया, नसरुद्दीन ने बाईं तरफ ही झुका दी। बोरी नदी में गिर गई। बाप ने कहा कि तुझे क्या हुआ? यह तूने क्या किया? नसरुद्दीन ने कहा कि अब मैं वयस्क हो गया हूं और अब तुम्हारी नीयत पहचानने लगा। अब अपनी नीयत पर खयाल रखना। अब तुम्हारी नीयत के उलटा करूंगा। अभी तक तुम्हारी भाषा से चलता था, अब तुम्हारी नीयत से चलूंगा। ऊपर-ऊपर तो कह

पोले बनो। खाली बनो। शून्य बनो। भीतर जगह बनाओ। उसी जगह से परमात्मा निःसृत होता है। और तब तुम जो भी करोगे, उसमें ही काव्य है, उसमें ही सौंदर्य है, उसमें ही नृत्य है, उसमें ही उत्सव है

रहे थे कि बाईं तरफ झुका और भीतर-भीतर कह रहे थे कि दाईं तरफ झुका। अब मैं वयस्क हो गया हूं। मैंने नीयत पहचान ली। मैंने कहा अब हो गया बहुत चकमा, काफी दिन चकमा दे चुके। अब जरा सोच-समझ कर।

अब और झंझट खड़ी हो गई। ऐसा ही तुम मुझे समझो। मुझसे तुमने आशीष मांगा तो अभिशाप दे दूंगा। और ऐसा आशीष कि काव्य-जगत में खूब ख्याति पाऊं!

भैया, कविता ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है? किन जन्मों के दिए गए कष्टों का तुम बदला ले रहे हो? या श्रोताओं से तुम्हारी कोई दुश्मनी है? क्यों सताना किसी को? कुछ और करने को नहीं है गोपालदास! अरे गोलोक की खोज करो! कविता वगैरह करने से क्या होगा? प्रार्थना करो प्रभु से कि गोलोक में नंदीबाबा की तरह जन्म हो जाए! नंदीबाबा का खयाल रखना, भूल मत जाना; कहीं गोलोक में गऊ होकर पैदा हुए तो बेकाम।

मुल्ला नसरुद्दीन अपने मनोवैज्ञानिक से कह रहा था कि इस सपने से मैं बहुत परेशान हूं। रोज रात यह सपना आता है, चूकता ही नहीं। मेरी रातें खराब हो गईं, चैन नहीं है। और दिन भर डरा रहता हूं कि फिर यह सपना आएगा। और आता है, जरूर आता है। अब वर्षों हो गए, अब तो मुझे राहत चाहिए।

मनोवैज्ञानिक ने कहा, मैं यह तो सुनूं कि सपना क्या आता है?

उसने कहा, सपना यह आता है कि एक से एक सुंदर स्त्रियां एकदम रासलीला कर रही हैं मेरे चारों तरफ।

मनोवैज्ञानिक ने कहा, अरे तो इसमें बुराई क्या है? मजा लो!

उसने कहा कि अरे तुम समझे ही नहीं। सपने में यही तो खराबी होती है कि मैं भी स्त्री, सो मजा भी नहीं ले पाता। और रांडें बहुत उछल-कूद मचाती हैं। और जब जगता हूं तो पाता हूं, अरे मजा क्यों नहीं लिया! मैं तो मुल्ला नसरुद्दीन। मगर जब सोता हूं, सपना देखता हूं, तो हमेशा यही गड़बड़ हो जाती है—मैं खुद ही स्त्री।

सो यह तुम जरा खयाल रखना। गोलोक की खोज तो करो, मगर यह प्रार्थना कर देना भगवान से कि नंदीबाबा बनाना। नहीं तो गोलोक भी चले गए गऊमाता होकर, तो फिर चूके।

अब हमारे नंदीबाबा हैं संत महाराज। रंजन ने मुझे लिखा है...अब रंजन समझो कि गऊमाता हैं... रंजन ने लिखा है कि अपने नंदीबाबा को सम्हालो, क्योंकि वे रिसेप्शनिस्ट आफिस में बार-बार घुस आते हैं। और रिसेप्शनिस्ट ऑफिस में गऊमाताओं का ही लोक है—गोलोक! रंजन ने मुझे लिखा है कि और हमसे कहते हैं आ-आ कर कि हमको भी रिसेप्शन आफिस में भरती कर लो, कि हमको पहरा नहीं देना, हमको तो रिसेप्शन, यहीं स्वागत के काम में हमें भी लगा लो।

मैंने रंजन को खबर भेज दी कि इनको बिलकुल भीतर मत घुसने देना। नंदीबाबा का वहां क्या काम? तुम बिलकुल बाहर, नंदीबाबा को बाहर बिठा कर रखो। उनका काम ही बाहर है। हर शिव जी के मंदिर के सामने बैठे रहते हैं। उनको कोई भीतर घुसने देता है? और गऊओं के बीच इनकी जरूरत क्या है? अपने बाहर ही बैठे-बैठे गऊओं का सपना देखो—कि अहा यह गऊ जा रही, वह गऊ जा रही!

तो गोपालदास, तुम गोलोक की खोज करो, कहां की बातों में पड़े हो। क्या कहते हो कि भगवान, मैं एक छोटा-मोटा कवि हूं। एक तो छोटे और मोटे! पता नहीं इस तरह के मुहावरे क्यों प्रचलित हो गए हैं—छोटा-मोटा! अरे मोटे होते और लंबे होते तो भी ठीक था। एक तो छोटे और मोटे! यह तो दोहरी मुसीबत हो गई।

मेरठ में हमको मिले, धमधूसर कव्वाल,
तरबूजे सी खोपड़ी, खरबूजे से गाल।
खरबूजे से गाल, देह हाथी सी पाई
लंबाई से ज्यादा थी उनकी चौड़ाई
बस से उतरे, इक्कों के अड्डे पर आए
दर्शन करके घोड़ों ने आंसू टपकाए।
रिक्शे वाले डर गए, डील-डौल को देख
साहस कर आगे बढ़ा, तांगे वाला एक
तांगे वाला एक, चार रुपये मैं लूंगा,
दो फेरे करके हुजूर को पहुंचा दूंगा
ठेले वाला बोला—क्यों बे तांगे वाले!
मेरे ग्राहक को तू तोड़ रहा है साले?

इतने में ही आ गई संयोजक की कार
'एलीफेंटा' में मिला कमरा नंबर चार।
कमरा नंबर चार, तुरत धोबी बुलवाया
कुरता-पाजामा उसके आगे खिसकाया।
धोबी चौंका! जी यह काम न बस कर मेरे
और किसी से धुलवाइए ये तंबू-डेरे।
पहुंचे दिल्ली जंक्शन, तब यह उठा खयाल,
कर लें तौल मशीन पर, दस का सिक्का डाल।
दस का सिक्का डाल, टिकट बाहर को आई,
हमने पूछा—क्या लिखा है इसमें भाई?
कहने लगे कि काका साब, आप ही पढ़िए,
कृपया चार आदमी एक साथ मत चढ़िए!

तुम कहते हो छोटा-मोटा कवि! और कविता नाजुक चीज—स्त्रैण। और तुम छोटे-मोटे कवि। क्यों भैया किसी के पीछे पड़े? किसी ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा? और कविता भी क्या करोगे? इधर बहुत कविताएं चल रही हैं देश में, एक से एक कविताएं मेरे देखने में आती हैं!

शक्कर महंगी हो गई, हो गया महंगा धान।
लीडर की फसलें उगीं, भारत देश महान।।
कुर्सी धड़कन प्राण की, कुर्सी है निःश्वास।
कुर्सी गए न ऊबरे, मंत्री अफसर बॉस।।

ऐसी-ऐसी कविताएं हो रही हैं!

दिल्ली में सब रम रहे, नेता, चोर, दलाल।
पांच साल तक वह टिके, जिसकी मोटी खाल।
जी हुजूर, आपके राज्य में
हमें जीने के लिए सब कुछ मिल गया है
पेट की आग है
मिलों के पिछवाड़े से आता हुआ पानी है
आपके चौड़े मुख की धौंकनी से फूटती
वायदों की गरम-गरम हवा है
और आकाश
अरे सिर के ऊपर तो आकाश ही आकाश है
अब सिर्फ पांव टिकाने के लिए
एक गज जमीन की तलाश है

ऐसी कविताएं हो रही हैं!

सूखाग्रस्त क्षेत्र में
तालाब के निर्माण का मुहूरत
करते हुए बोले मिनिस्टर–
हम इस तालाब को
शीघ्र बनवा देंगे मगर...
मगर... मगर...
एक दर्शक चिल्लाया–
मंत्री जी, मगर मगर
क्या करते हैं
कीजिए तालाब का मुहूरत
जब आप हैं तो मगर की क्या जरूरत?

प्रश्न कर रहे क्लास में, मास्टर व्यंकटराउ,
गुण माता के दूध में, क्या-क्या हैं बतलाउ।
क्या-क्या हैं बतलाउ, तभी बोला एक बच्चा,
बिना उबाले इसको पी सकते हैं कच्चा।
अदर मिल्क से 'मदर मिल्क' होता पावरफुल,
इसमें चीनी नहीं डालनी पड़ी बिलकुल।
आखिर में बोली, छोटी-सी लड़की लिल्ली,
मम्मीजी का दूध नहीं पी सकती बिल्ली।

क्या कविताएं करने का इरादा है? कविताएं तो हो चुकीं। खूब काव्य रचे जा रहे हैं। और ख्याति पाकर क्या करोगे? मिल भी गई ख्याति तो क्या होगा? सब ख्याति पानी पर खींची गई लकीरों जैसी है; खिंच भी नहीं पातीं लकीरें और मिट जाती हैं। कुछ मतलब की बात पूछो। यह ख्याति तो अहंकार का ही रोग है। कोई धन कमा कर पाता है, कोई पद पर बैठ कर पाता है, कोई त्याग-तपश्चर्या करके पाता है। जिनसे कुछ नहीं बनता वे कविता करके पा लेते हैं। कविता में करना क्या पड़ता है? कुछ जोड़-तोड़। कुछ शब्दों की तिकड़म। मगर ख्याति की आकांक्षा वही। ख्याति की आकांक्षा ही तो मनुष्य को भटका रही है, गोपलदास। इसलिए ही तो गोलोक नहीं पहुंच पा रहे।

छोड़ो यह अहंकार! क्या होगा, सारी दुनिया भी जान ले तो क्या होगा? खुद को जानो तो कुछ हो। अपने को जानो तो कुछ हो। जिसने अपने को जाना उसे कोई भी न जाने तो चलेगा। और जिसे सारी दुनिया भी जान ले और अपने को ही न जाना उसने, तो व्यर्थ जीवन गंवाया।

मैं इस तरह का आशीष नहीं दे सकता हूं। मैं तो यही सुझाव दे सकता हूं—आशीष नहीं—कि अगर थोड़ा भी जीवन में बल है, थोड़ी भी ऊर्जा है, थोड़ी भी बुद्धिमता है, तो सब कुछ निछावर कर दो स्वयं को जानने के लिए।

जिस दिन तुम अपने को जान लोगे, शायद उस दिन कविता भी पैदा हो। मगर उस कविता का रंग-रूप और होगा, गंध-गौरव और होगा, प्रसाद-प्रकाश और होगा

और जिस दिन तुम अपने को जान लोगे, शायद उस दिन कविता भी पैदा हो। मगर उस कविता का रंग-रूप और होगा, गंध-गौरव और होगा, प्रसाद-प्रकाश और होगा। जो स्वयं के जानने से धुन बजेगी, जो स्वयं को जानने से तुम्हारे हृदय की वीणा के तारे झनझना उठेंगे, उनसे कुछ पैदा हो तो सुंदर है। चित्र बनें, गीत आए, नृत्य उमगे, जो भी हो वह स्वाभाविक होगा, सहज होगा, स्वस्फूर्त होगा। उसके लिए तुकबंदी नहीं करनी पड़ेगी।

यही तो कवि और ऋषि में फर्क है।

मैं तो कहूंगा : ऋषि बनो! क्या कवि बनना? फर्क को खयाल में रख लेना। कवि वह है जो चेष्टा करके रचता है। और ऋषि वह है जिससे धारा बहती है—सहज बहती है। कवि वह है जो खुद ही फूंक मार-मार कर किसी तरह बांसुरी बजाता है, थका अपने को डालता है, फेफड़ों को पसीना आ जाता है। और ऋषि वह है जो खुद ही बांसुरी हो गया—बांस की पोली पोंगरी। और कह दिया परमात्मा से कि बजाना हो तो बजा, न बजाना हो तो न बजा। और ऐसा कभी नहीं हुआ कि परमात्मा ने न बजाई हो ऐसी बांसुरी। जो भी अपने भीतर अहंकार से खाली है, वही बांस की पोंगरी हो सकता है। खयाल रखना, ठोस डंडे नहीं बजाए जाते। हां, किसी की खोपड़ी पर बजाने हों तो बात अलग। मगर ठोस डंडों से कोई स्वर नहीं उठते, कोई गीत नहीं फूटते। और अहंकार ठोस डंडा है। और ख्याति की आकांक्षा तो ठोस डंडा बनने की आकांक्षा है। पोले बनो। खाली बनो। शून्य बनो। भीतर जगह बनाओ। उसी जगह से परमात्मा निःसृत होता है। और तब तुम जो भी करोगे, उसमें ही काव्य है, उसमें ही सौंदर्य है, उसमें ही नृत्य है, उसमें ही उत्सव है!

— ओशो

आपुई गई हिराय

छठवां प्रवचन, दूसरा प्रश्न

(पूरा प्रवचन टेप पर भी उपलब्ध है)